गंगा नदी

श्रद्धा को वास्तविक अर्थ से जोड़िए

☼ भारत डोग़रा ☼

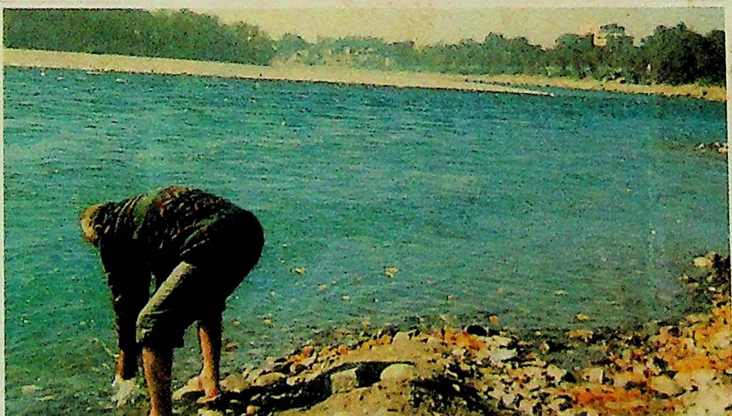

519
1/9/98

गंगा नदी

श्रद्धा को वास्तविक अर्थ से जोड़िए

☼ भारत डोगरा ☼

1998

सहयोग राशि : 10 रूपये

श्रद्धा का वेग

नैनी जेल से लिखे गए अपनी प्रिय पुत्री इंदिरा प्रियदर्शनी के एक पत्र में **पंडित जवाहर लाल नेहरू** ने लिखा है-"एक दिन प्रातः मैं बैठा पढ़ रहा था तो दूर से आती आवाजें मेरे कानों में पड़ी, कोलाहल बढ़ता जा रहा था और इतने में मुझे सहसा स्मरण हो आया कि आज संक्रांति अर्थात माघ मेले का पहला दिन है और लाखों तीर्थ यात्री प्रातः स्नान के लिए संगम पर जा रहे हैं जहां पर गंगा के साथ यमुना और अदृश्य सरस्वती का मिलन होता है। ये लोग गीत गाते जा रहे थे और थोड़ी-थोड़ी देर बाद 'गंगा मैया की जय' के नारे गूंज उठते थे। उनकी आवाजें नैनी जेल की दीवारें फांद कर मुझ तक पहुंच रही थीं, उस समय मुझे ध्यान आया कि श्रद्धा में कितनी शक्ति है जो इस महान जन समूह को गंगा नदी की ओर खींचे लिए जा रही है...मैंने सोचा कि पता नहीं कितने सैकड़ों या हजारों वर्षों से तीर्थ यात्री इसी प्रकार गंगा के स्नान के लिए आते रहे हैं। मानव आते हैं और चले जाते हैं, सरकारें और साम्राज्य बनते और बिगड़ते रहते हैं, लेकिन परंपरा शाश्वत है-मानव पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसके आगे झुकता चला आया है।"

******

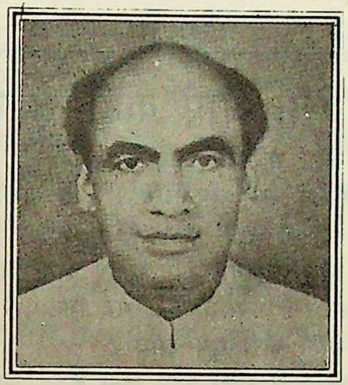

लोककवि श्री घनश्याम 'शैलानी'

यह पुस्तिका लोककवि श्री घनश्याम 'शैलानी' (1934-1997) को सादर समर्पित है

'चिपको आंदोलन' के संदेश को उत्तराखंड के दूर-दूर के गांवों में अपने मार्मिक और भावनापूर्ण गीतों से पंहुचाने वाले लोककवि घनश्याम शैलानी ने अपने अन्तिम दिनों में गंभीर बीमारियों से बड़ी दिलेरी व धैर्य से संघर्ष किया।

चाहे जंगल बचाने के लिए 'चिपको आंदोलन' हो या टिहरी बांध को रोकने का आंदोलन, चाहे भैंसों की बलि की कुप्रथा का विरोध हो या शराब के ठेकों के विरूद्ध मोर्चा लेना हो, शैलानी जी गढ़वाल के समाज और पर्यावरण को बचाने के किसी भी संघर्ष में पीछे नहीं रहे। उनके गीतों ने सिद्ध कर दिया कि लोगों के ह्रदय को गहराई से छूने वाली बात तभी कही या लिखी जा सकती है जब मन और तन दोनों से लोगों के बीच रहा जाए।

उन्होंने न केवल अपने गीतों में गढ़वाल की मिट्टी के दुख-दर्द को समेटा अपितु वे इस दर्द को आवाज देने के लिए उन सब जगहों पर स्वयं पंहुचते रहे जहां इस दुख-दर्द को दूर करने के संघर्ष चल रहे थे। अपने इस संघर्षमय जीवन में उन्होंने बहुत से कष्टों को हंसी-खुशी से झेला। अनेक महान उपलब्धियों के बावजूद वे स्वार्थ और अहंकार से सदा दूर रहे। अपने साथियों व जनसाधारण का असीम प्यार उन्हें मिला।

गंगा आए कहां से गंगा

गंगा आए कहां से गंगा जाए कहां रे
लहराए पानी में जैसे धूप छांव रे – 3 बार

रात कारी दिन उजियारा, मिल गए दोनों साए – 2 बार
साजन देखो रंग रूप के कैसे भेद मिटाए रे
लहराए पानी में जैसे धूप–छाँव रे
गंगा आए कहां से गंगा जाए कहां रे
लहराए पानी में – – –

काँच कोई माटी कोई रंग बिरंगे प्याले
हे हे हे ऽ ऽ ऽ – 2 बार
प्यास लगे तो एक बराबर जिसमें पानी डाले रे
लहराए पानी में जैसे – – –
गंगा आए कहाँ से गंगा – – –
लहराए पानी में – – –

नाम कोई बोली कोई लाखों रूप और चेहरे
ओ ओ ओ ऽ ऽ ऽ – 2 बार
खोल के देखो प्यार की आँखे, सब तेरे सब मेरे रे
लहराए पानी में जैसे – – –
गंगा आए कहां से – – –
लहराए पानी में – – –
गंगा ऽ ऽ ऽ आए कहां से गंगा – – –,

फिल्म काबुलीवाला से

गंगा

दिसम्बर के आरंभ में हरिद्वार में महाकुंभ की तैयारियां जोर-शोर से चल रही थी, तभी नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरणीय इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान के इस अनुसंधान के समाचार मिले कि लक्ष्मण झूले, राम झूले और हर की पौड़ी से लिए गये पानी के नमूनो में अनेक खतरनाक बीमारियों के ऐसे रोगाणु मिले हैं जिनपर आम तौर पर उपयोग होने वाली एन्टीबायटिक दवाईयों का असर भी नहीं हो रहा है। इस संस्थान के निदेशक ने समाचार पत्रो को बताया कि हम उचित समय पर चेतावनी देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं क्योंकि लाखों की संख्या में तीर्थ यात्री यहां आने वाले हैं।

इससे कुछ समय पहले पटना से ये समाचार मिले थे कि गंगा में स्नान करने वाले अनेक तीर्थयात्रियों को कुछ दिन बाद त्वचा की अनेक स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ा था।

इस स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि लोग परेशान होकर यह पूछ रहे है - आखिर 11 वर्षों (1986-97) तक गंगा कार्य योजना (गंगा एक्शन प्लान या गैप) पर लगभग 460 करोड़ रूपये खर्च कर हमने क्या हासिल किया?

जहां तक सरकारी आंकड़ों का सवाल है वे बहुत निराशावादी नहीं हैं। वैज्ञानिक नदियों के प्रदूषण को जैव-रासायनिक आक्सीजन मांग (बायो कैमिकल आक्सीजन डिमांड या बी.ओ.डी.) व घुलनशीन आक्सीजन (डिजाल्वड आक्सीजन या डी. ओ.) इन दो मानको से आंकते हैं। बी.ओ.डी. जितना कम होगा, पानी की गुणवत्ता उतनी ही अच्छी होगी। इससे विपरीत डी.ओ. जितना अधिक होगा, उतनी ही पानी की गुणवत्ता अच्छी मानी जायेगी।

चूंकि सब नदियों के पानी की गुणवत्ता को उत्कृष्ट बनाने की उम्मीद ही अब नहीं की जा सकती है, अतः विभिन्न नदियों में कितना प्रदूषण सहन किया जा सकता है इसके बारे में विचार-विमर्श कर केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने नदियों (या अन्य जल-स्रोतों) को जल की चाही जाने वाली गुणवत्ता या गुणवत्ता के लक्षण की दृष्टि से पांच श्रेणियों में बांट दिया है। इन पांचों श्रेणियों के लिए बी.ओ.डी. जैसे मानक अलग-अलग हैं। चूंकि गंगा नदी को बी श्रेणी में रखा गया है, अतः यहां बी श्रेणी के मानकों की चर्चा करना ही उचित है।

बी श्रेणी को परिभाषित इस तरह किया गया है कि पानी स्नान करने की दृष्टि से उचित हो। गंगा स्नान करने वाले करोड़ों श्रद्धालुओं को ध्यान में रखते हुए ही शायद यह श्रेणी निर्धारित की गई। बी श्रेणी के लिए माना जाता है कि बी.ओ.डी. की अधिकतम मात्रा 3 मिलीग्राम प्रति लिटर हो तथा डी.ओ. की न्यूनतम मात्रा 5 मिलीग्राम प्रति लिटर हो।

सरकारी आंकड़े यह बताते हैं कि बी.ओ.डी. की दृष्टि से गैप से पहले वर्ष 1986 में स्थिति वास्तव में काफी खराब हो चुकी थी। जहां बी.ओ.डी. को 3 से आगे नहीं जाना चाहिए था वहां इलाहाबाद में यह 15.5 तक पहुंच गया था। बनारस में 10.6 तक और कानपुर में 8.6 तक पहुंच चुका था। गैप के बाद 1996 में बी.ओ.डी. का स्तर इन तीन नगरों में काफी तेजी से कम होकर क्रमशः 3.3, 2.3 और 4.1 तक पहुंच गया। सरकारी आंकड़ों में बताई गई इस प्रदूषण की गिरावट के बावजूद जो प्रदूषण बोर्ड का स्वयं निर्धारित बी श्रेणी का लक्ष्य है उससे वर्ष 1996 में भी हम वंचित थे

जहां तक डी. ओ. का सवाल है तो छः प्रमुख स्थानों से एकत्र किए

गए सरकारी आंकड़ों के अनुसार न्यूनतम सीमा का उल्लंघन 1986 में भी कहीं नहीं हुआ और 1996 में भी कहीं नहीं हुआ यह जरूर चिन्ता की बात है कि इस दृष्टि से पानी की गुणवत्ता 1986 की अपेक्षा 1996 में कानपुर, पटना और उलुबेरिया में (छः में से तीन स्थानों में) गिर गई।

अतः बी.ओ.डी. और डी.ओ. संबंधी सरकारी आंकड़े एक मिली-जुली तस्वीर प्रस्तुत करते हैं - कुछ दृष्टियों से हालात सुधरी हैं और कुछ दृष्टियों से स्थिति चिंताजनक है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि इस स्थिति तक पहुंचने के लिए भी गैप ने पूर्व निर्धारित बजट और समय की अपेक्षा कहीं अधिक बजट और समय लिया है।

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि बी.ओ.डी. को निर्धारित लक्ष्य तक रखने का अर्थ यह नहीं है कि रोगाणुओं के प्रदूषण से भी मुक्ति मिल गई है। इसके लिए पानी में कोलीफार्म जीवाणुओं की मात्रा जानने का जो तरीका अपनाया गया है वह अधिक पेचीदा है। इसके अनुसार यदि कोलीफार्म की मात्रा निर्धारित सीमा से अधिक पायी गई, तो भी यदि बीस प्रतिशत से कम सैम्पलों तक यह अधिकता सीमित है और निर्धारित लक्ष्य से 4 गुणा कोलीफार्म की उपस्थिति वाले सैम्पलों की संख्यां 5 प्रतिशत से ज्यादा नहीं है, तो भी इसे निर्धारित सीमा के अनुकूल ही मान लिया जाएगा। इस परिभाषा की जटिलता से ही स्पष्ट है कि इस आंकड़े में हेर-फेर आसानी से हो सकती है और जन साधारण या गंगा स्नान करने वाले लोग जो जानकारी सबसे अधिक चाहते हैं, उसी को इतना जटिल बना दिया गया है कि यह बात समझ में ही ना आये। ध्यान रहे कि भारत के महालेखा परीक्षक ने भी अपनी एक रिपोर्ट में उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर गंगा के प्रदूषण के कोई

निश्चित निष्कर्ष प्राप्त करना कठिन बताया है। वैज्ञानिकों और अधिकारियों के नेक इरादों के बारे में कोई शक किए बिना यह कहना जरूरी है कि वह जब तक जनसाधारण के लिए महत्त्वपूर्ण जानकारी को इस रूप में उपलब्ध नहीं करवाएंगे जिस रूप में वे उसे भली-भांति और सरलता से समझ सकें तब तक नदियों की वास्तविक स्थिति और उसके बारे में जन साधारण के दायित्व के बारे में जनमत तैयार करना कठिन होगा।

फिलहाल इतना तो कहा ही जा सकता है कि गैप की कार्य क्षमता के बारे में प्रमाणिक स्त्रोतों से भी अनेक शिकायतें मिलती रही हैं। नदियों के संरक्षण से जुड़ी सबसे महत्वपूर्ण संस्था है राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय जो पर्यावरण व वन मंत्रालय से जुड़ी हुई है। इस संस्था के सलाहकार श्री आर.पी. शर्मा ने पिछले वर्ष गैप का प्रथम चरण पूरा होने के बाद लिखा कि सीवरों और पंपिंग स्टेशनों के रख-रखाव व संचालन के लिए राज्य सरकारों (विशेषकर उ0प्र0 और बिहार) द्वारा जरुरी धनराशि उपलब्ध न कराने के कारण '' ट्रीटमेंट की सुविधाएं उपलब्ध होने के बावजूद अनेक स्थानों पर सीवेज या मलजल सीधा नदियों में पहुंच रहा है। इससे तो गंगा एक्शन प्लान का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।'' उन्होंने आगे लिखा है कि बिजली न होने के कारण भी उपलब्ध सुविधाएं घटी की घटी रह जाती है और मलजल सीधा नदी में पंहुचता रहता है।

पिछले वर्ष कानपुर मे कार्यरत प्रदूषण नियंत्रण सरकारी अधिकारी ने ही यह सूचना उपलब्ध कराई कि गंगा की एक सहायक नदी में (जो थोड़ा सा आगे जाकर गंगा में ही मिल जाती है) सीवेज इतनी अधिक मात्रा में सीधा फेंका जा रहा था कि बी.ओ.डी. और डी.ओ. दोनो निर्धारित सीमा में

बहुत बाहर निकल चुके थे।

कानपुर के चमड़ा उद्योग से गंगा का बहुत अधिक प्रदूषण होता है। इस पर काफी ध्यान भी दिया गया है विदेशी सहायता से कम करने के लिए परियोजना भी बनाई गई है इसके बाबजूद इस उद्योग के अवशेष सीधे गंगा में पंहुचने व क्रोमियम जैसी खतरनाक धातु को अलग करने की पर्याप्त व्यवस्था न होने के समाचार मिलते रहे है। उल्लेखनीय है कि गैप में अलग से औद्योगिक प्रदूषण के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी - सामान्य कानूनों के तहत औद्योगिक प्रदूषण पर नियन्त्रण करना था। राष्ट्रीय पर्यावरणीय इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान ने हरिद्वार ऋषिकेश में गंगा के पानी में अधिक रोगाणुओं की उपस्थिति के बारे में जो चेतावनी दी है, उसमें इस प्रदूषण के स्त्रोत के रूप में औद्योगिक प्रदूषण पर ही संदेह व्यक्त किया गया है।

वैसे गंगा के ऊपरी क्षेत्रों के अनेक अपेक्षाकृत छोटे शहरों, कस्बों, पर्यटन-स्थलों और यहां तक कि तीर्थ स्थलों द्वारा भी गंगा में बहुत मलजल और अन्य गंदगी बहा देने की प्रवृत्ति देखी गई है। बहुत पवित्र मानी जाने वाली जगहों में भी यह हो रहा है। गैप के प्रथम चरण में 1985 में एक लाख से अधिक आबादी वाले शहरों को ही प्रदूषण नियंत्रण के लिए चुना गया, अतः अन्य स्थानों से होने वाला प्रदूषण बेरोकटोक बढ़ता रहा।

वैसे लाखों लोगो द्वारा गंगास्नान का कार्य अपने आप में भी प्रदूषण बढ़ाता है। प्रदूषण नियंत्रण के एक वरिष्ठ वैज्ञानिक ने हाल ही में हरिद्वार में पत्रकारों को बताया कि श्रद्धालु स्नान के दौरान गंगा में हजारो जीवाणु और रोगाणु छोड़ जाते हैं। उन्होंने बताया कि श्रद्धालुओं में कुछ ऐसे होते हैं जो कई दिन के बाद गंगा में स्नान करते हैं। वे अधिक रोगाणु छोड़ते हैं।

तरह-तरह के चढ़ावे से भी गंगा का प्रदूषण बढ़ता है, लापरवाही से फेंके गए पालीथीनों के कारण तो और भी अधिक।

तरह-तरह के प्रदूषण को ग्रहण करने की किसी भी नदी की क्षमता बहुत हद तक इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसमें पानी का बहाव कितना है। किन्तु जब बड़े बांधों के निर्माण से नदी का पानी विभिन्न उपयोगों के लिए रोक दिया जाता है या मोड़ दिया जाता है तो कुछ स्थानों पर नदी का बहाव बहुत कम हो सकता है (बाद में किसी सहायक नदी के मिलने पर इस नदी का बहाव फिर अपेक्षाकृत पर्याप्त हो सकता है)। यही स्थिति गंगा नदी व इसकी सहायक नदियों की भी है। इन पर तरह-तरह के बांध, बैराज आदि बनने से विशेष स्थानों पर इनका बहाव कम हो रहा है या भविष्य में ऐसा होने की संभावना है। इस स्थिति में प्रदूषण भी बढ़ता रहे तो समस्या हाथ से बाहर निकल सकती है।

इन सब समस्याओं को ध्यान में रखते हुए और पिछले अनुभव से सबक सीखते हुए हमें निकट भविष्य में गंगा नदी के प्रदूषण नियंत्रण कार्य को और असरदार बनाना होगा। गैप का प्रथम चरण समाप्त हो चुका है और दूसरा चरण आरंभ हो रहा है। अतः गैप की पिछली गलतियों को दूर करने के साथ-साथ लोगों की अधिक भागेदारी प्राप्त करने के प्रयास भी जरूर होने चाहिए।

हाल ही में प्रकाशित एक चर्चित पुस्तक 'एनवायरेंटमेल वेल्यूज़ इन अमेरिकन कल्चर' ('अमरीकन संस्कृति में पर्यावरणीय मूल्य') में विस्तृत सर्वेक्षण का एक काफी आश्चर्यजनक परिणाम यह निकला कि अधिकांश लोगों ने पर्यावरणीय मूल्यों के प्रति गहरी आस्था प्रकट की। सर्वेक्षण का यह

परिणाम आश्चर्यजनक इसलिए था क्योंकि अमरीकी जीवन-शैली आम-तौर पर पर्यावरणीय सोच के बहुत प्रतिकूल मानी जाती है। इस परिणाम के बारे में स्वयं सवाल उठाते हुए इस पुस्तक के लेखकों कैम्पटन, बोस्टर और हार्टले ने पूछा,"यदि अमरीकी पर्यावरणीय मूल्य इतने व्यापक और मजबूत हैं तो पर्यावरण को बचाने के अधिक काम क्यों नहीं होते हैं ? लोग सामूहिक रूप से पर्यावरण के कानूनों को मजबूत बनाने का कार्य क्यों नहीं करते हैं? . . . व्यक्तिगत स्तर पर वे उपभोग के उन पक्षों को कम क्यों नहीं करते हैं जो पर्यावरण की दृष्टि से अधिक तबाही करते हैं ?"

इस पुस्तक पर एक समीक्षा लेख में ब्रान टेलर ने इकालाजिस्ट पत्रिका में बताया है - इन पर्यावरणीय मूल्यों की व्यापकता का एक कारण यह है कि इनमें से अनेक धर्म व धार्मिक भावनाओं से ग्रहण किए गए हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन मूल्यो के अनुकूल वास्तविक रचनात्मक कार्य भी होगा। टेलर ने कुछ अन्य अध्ययनों का जिक्र किया है जिनके अनुसार जब पर्यावरण संरक्षण के लिए अपनी आय व उपभोग को कम करने की बात उठी तो मात्र 18 प्रतिशत अमरीकन ही इसके लिए तैयार हुए। टेलर का निष्कर्ष - किसी समाज में ऐसे मूल्यों के प्रति बाहरी अभिव्यक्ति का यह अर्थ नहीं है कि वह समाज वास्तव में उन सुधारों या बदलावों के लिए तैयार है जो पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है।

भारत में गंगा नदी के प्रति जो बहुत व्यापक धार्मिक भावनायें और अटूट श्रद्धा है, उसके बावजूद गंगा नदी का प्रदूषण बहुत अधिक है। श्रद्धा होने का यह अर्थ नहीं है कि प्रदूषण से गंगा की रक्षा के लिए लोग अपने आप सामने आ जायेंगे। इतना जरूर है कि यदि सामाजिक कार्यकर्त्ता और सरकार

समझदारी से लोगों के रचनात्मक सहयोग का प्रयास करें, तो इस श्रद्धा से एक आंदोलन जैसा माहौल तैयार करने में मदद जरूर मिलेगी। यहां इस श्रद्धा को हमें किसी संकीर्ण धार्मिक अर्थ में नहीं लेना होगा अपितु उसे उस गंगा-यमुना संस्कृति से जोड़ना होगा जिसमें सब धर्मों के अनुयायियों को समान स्थान प्राप्त है।

गंगा एक्शन प्लान (GAP या गैप) जब वर्ष 1986 में आरंभ किया गया था तो कुछ लोगों ने यह उम्मीद प्रकट की थी कि शायद अब गंगा के प्रति जनसाधारण की श्रद्धा को एक आंदोलन नहीं तो कम से कम लोगों की एक व्यापक भागेदारी का रूप दिया जा सकेगा। किन्तु गैप के प्रथम चरण के समाप्त होने के बाद आज कई पर्यावरणविद कह रहे हैं कि लोगों की व्यापक भागेदारी का अभाव इस योजना की एक प्रमुख कमजोरी रही है। खैर, गैप का दूसरा चरण हमारे सामने है और इस समय भी हम इस कमजोरी को दूर कर योजना के लिए उपलब्ध बजट का बेहतर उपयोग कर सकते हैं।

गंगा और उसकी सहायक नदियों के आसपास बड़ी संख्या में लोग आजीविका की गंभीर समस्याओं से त्रस्त हैं। ये समस्यायें किसी न किसी रूप में इन नदियों से जुड़ी हुई हैं। यदि जनसाधारण की इन रोजी-रोटी समस्याओं को असरदार ढंग से दूर करने के प्रयासों को गंगा की रक्षा के साथ जोड़ दिया जाए तो वास्तव में एक बहुत व्यापक स्तर पर गंगा की रक्षा के कार्य को एक जन आंदोलन का रूप दिया जा सकता है। गैप के प्रथम चरण के बारे में एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी यह की गई थी कि यह तो एक 'पाईपों और पंपों' की योजना बन कर रह गई है। यदि गैप के दूसरे चरण को इस संकीर्ण तकनीकी दृष्टिकोण से बाहर निकालकर लोगों की योजना

बनना है तो उसे इस क्षेत्र के लोगों के दैनिक जीवन के संघर्षों के भी नजदीक आना होगा और उनसे जुड़ना होगा।

मछुआरों की रोजी-रोटी की स्थिति तो बहुत नजदीकी तौर पर नदी के प्रदूषण की स्थिति से जुड़ी है। जब नदियों में प्रदूषण बहुत बढ़ जाता है तो मछलियां तड़प-तड़प कर मरने लगती है या प्रदूषण के कारण बीमारियों के फैलने के डर से उनकी बिक्री बहुत कम हो जाती है। दोनों स्थितियों में मछुआरों की रोजी-रोटी संकट में पड़ती है।

इसके अतिरिक्त नदियों पर बनने वाले बांधों और बैराजों से भी मछलियों की संख्या में भारी कमी आ सकती है। एक वरिष्ठ इंजीनियर वाई. के. मूर्ति लिखते हैं, "किसी नदी पर बांध निर्माण का मछलियों और उनके विकास पर गहरा असर पड़ता है। प्रवासी मछलियों का अपने प्रजनन क्षेत्र आन-जाना अस्त-व्यस्त होने के बाद उनके प्रजनन स्थान नष्ट ही हो जाते हैं।" एक विश्व स्तर के विशेषज्ञ डा० डेविड तलमेजन ने न्यू साईंटिस्ट पत्रिका में लिखा है,"कृत्रिम चैनल व मछलियों के आने-जाने के अन्य उपायों के बावजूद (बांध निर्माण के बाद) मछलियों के प्रवास में बहुत अवरोध आ जाता है। स्थितियों प्रजनन और मछलियों के बड़े होने के प्रतिकूल हो जाती हैं। नदी में मछलियों की संख्या काफी कम हो जाती हैं और कुछ प्रजातियां तो पूरी तरह लुप्त हो जाती हैं।" भारत में फरक्का बैराज और दामोदर नदियों पर बने बांधों के बाद हिल्सा और अन्य मछलियों की कमी इस प्रवृत्ति का एक उदाहरण है।

बांधों द्वारा पानी रोकने या मोड़ने से कुछ क्षेत्रों में नदी का बहाव कम होता है। यदि उसमें गंदगी पहले जितनी ही फैंकी जाती रहे तो प्रदूषण की

समस्या विकट हो जायेगी। बहाव कम होने से मछुआरों के साथ मल्लाहों की आजीविका पर भी प्रतिकूल असर पड़ेगा।

नदियों से जुड़े ये दो समूह आजीविका के गंभीर संकट को झेल रहे हैं। विशेषकर विहार में सामंती और असामाजिक तत्व उनसे तरह-तरह के वैध -अवैध कर, जुर्माने आदि भी वसूलते रहे हैं। गंगा मुक्ति आंदोलन जैसे कुछ आंदोलनों ने इन समूहों की आजीविका से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को असरदार ढंग से उठाया है। यदि इस कार्य को गंगा की रक्षा के साथ जोड़ दिया जाए तो यह बहुत उपयोगी होगा क्योंकि ये दो समूह ऐसे हैं जो गंगा (व उसकी सहायक नदियों) के आसपास ही रहते हैं और इन नदियों की गहरी जानकारी भी इन्हीं समुदायों को है।

इनमें से अनेक नदियों पर बनने वाले बांधों से अनेक लोग विस्थापित हो रहे हैं या होने वाले हैं। वे अपने भविष्य के प्रति बहुत आशंकित हैं। यदि वे केवल अपनी सीमित मांगों को न उठाकर इस ओर देश का ध्यान दिलायें कि इस तरह की परियोजनाओं का समग्र रूप से नदी और नदी-घाटी के लोगों पर क्या असर पड़ेगा तो इससे उनके आंदोलन को भी बल मिलेगा तथा गंगा (और उसकी सहायक नदियों) की व्यापक समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान जाएगा। इस तरह के कार्य को हिमालय बचाओ आंदोलन जैसे कुछ आंदोलन कर रहे हैं।

गंगा घाटी के एक बड़े क्षेत्र में बाढ़ नियंत्रण के नाम पर काफी धन खर्च करने के बावजूद बाढ़ की समस्या भीषण रूप लेती जा रही है। सैंकड़ों गांवों में इस कारण आजीविका की बिगड़ती स्थिति और प्रवासी मजदूरी पर बढ़ती निर्भरता नजर आती है।

विहार में बाढ़ नियंत्रण का सबसे अधिक कार्य तटबंधों के निर्माण के रूप में किया गया है। वर्ष 1954 में ये तटबंध नहीं के बराबर थे, तो बाढ़ संभावना का क्षेत्र 25 लाख हैक्टेयर था। अब लगभग 300 कि.मी. तटबंध बन चुके हैं तो बाढ संभावना का क्षेत्र सिमटने के स्थान पर तेजी से बढ़कर 71 लाख हैक्टेयर तक पंहुच गया है। साथ ही मलेरिया का प्रकोप बढ़ा है और कालाआजार की वापिसी हुई है। तटबंधों और नदी के बीच लाखों लोग नारकीय परिस्थिति में रहने को विवश हुए हैं या विस्थापित होकर दर-दर भटक रहे हैं। अनेक स्थानों पर, विशेषकर पश्चिम बंगाल में, नदी के कटाव की समस्या विकट हुई है जिसमें अनेकानेक गांवों का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है।

इन विकट हो रही परिस्थितियों से, विशेषकर बाढ़ के बारे में सही समझ बनाने के मुद्दे पर, विहार में बाढ़ मुक्ति अभियान और पूर्वी उत्तर प्रदेश में सहयोग नामक संस्था कार्यरत हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में दूर-दूर के जंगलों व वीरान इलाकों में बह रही नदी के बारे में कई बार जरूरी जानकारी प्राप्त करना भी कठिन हो जाता है। इस कार्य में वन गूजरों जैसे घुमंतू लोगों की सहायक भूमिका हो सकती है। विशेषकर नदी में किसी भू-स्खलन से विशाल चट्टानें गिरने व उसका पहाड़ी मार्ग रूकने की संभावना के बारे में पहले से चेतावनी मिल जाए तो यह बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

नदी के प्रदूषण को नियंत्रित करने के प्रयासों के बारे में प्रायः यह देखा गया है कि सीवेज के उपचार संयत्रों का खर्च विशेष परिस्थितियों में काफी महंगा पड़ सकता है और यदि प्रदूषण नियंत्रण के कार्य को व्यापक स्तर पर करना है तो सस्ते विकल्पों की तलाश भी चलती रहनी चाहिए। अनेक देशों

में सीवेज या मलजल को विशेष प्रक्रियाओं से गुजार कर सिंचाई व मछली पालन के लिए इसका सफल उपयोग हो सका है। इस तरह खर्च भी कम हुआ व अनेक लोगों को रोजगार मिला है। कलकत्ता में इस तरह का मछली पालन बड़े पैमाने पर होता रहा है। इन प्रयासों को मछुआरों, सफाई कर्मचारियों आदि के सहयोग से आगे बढ़ाना चाहिए और साथ ही इस बारे में अनुसंधान करते रहना चाहिए कि इस तकनीक से उत्पादित खाद्य सामग्री को स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित बनाया जाए।

गंगा नदी के प्रदूषण नियंत्रण अनुभव से यह स्पष्ट हुआ है कि ऊपर से थोपी गई तकनीक कई बार अव्यवहारिक सिद्ध होती है किन्तु जब स्थानीय लोगों के सुझाव लिए जाते हैं तो व्यवहारिक समाधान मिलने लगते हैं। वाराणसी में उपचार संयंत्रों, पंपों आदि के अपर्याप्त होने या ठीक से काम न करने की शिकायतें काफी समय से मिलती रहती थी, पर जब खर्च को कम करने के व बिजली पर निर्भरता कम करने के स्थानीय समाधान प्राप्त करने के प्रयास किए गए तो काफी बचत करने वाले व सफलता की संभावना रखने वाले सुझाव स्थानीय वैज्ञानिकों और स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराए गए हैं। पंचायतों, जिला परिषद, नगरपालिकाओं आदि स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के माध्यम से भी जनसाधारण की भागेदारी और सुझावों को प्राप्त करने के भरपूर प्रयास किए जाने चाहिए।

करोड़ों भारतीयों की श्रद्धा की प्रतीक गंगा की रक्षा के लिए निश्चय ही व्यापक स्तर पर जनसाधारण की भागेदारी प्राप्त हो सकती है पर इसके लिए समझदारी और धैर्य से कई स्तरों पर प्रयास की जरूरत है। जब यह प्रयास आगे बढ़ेंगे तो लोग अंधविश्वासों और कर्मकांड़ों के मोह को छोड़कर ऐसे

रचनात्मक कार्यों के लिए स्वयं आगे आने लगेंगे जिनसे प्रदूषण, बाढ़, भूमि-कटाव आदि के विनाश को निरंतर कम किया जा सके और गंगा मां के जीवनदायनी रूप को और प्रतिष्ठित किया जा सके।

नदियों का संकट

हजारों वर्ष से कल-कल बहने वाली अनेक सभ्यताओं को पोषित करने वाली बहुत सी नदियां आज संकट में हैं।

- वर्ष 1967 में पोलैंड में जितनी नदियों का अध्ययन हो सका, उनमें देखा गया कि 33% पानी प्रथम श्रेणी का था अथवा इन्फैक्शन हटाने के साधारण उपायों के बाद पीने योग्य था। केवल बीस वर्षों बाद वर्ष 1986 के अध्ययनों से पता चला कि प्रथम श्रेणी का पानी मात्र 4% रह गया है। वर्ष 1967 में सबसे निम्न स्तर के, सबसे प्रदूषित पानी का प्रतिशत 23 था, जो 1986 में 39 तक पंहुच गया। इस तरह दो दशकों के भीतर ही नदियों के जल की गुणवत्ता में भीषण बदलाव आ गया।
- नार्वे में अनेक नदियों के बढ़ते अम्लीकरण (acidification) के कारण 1978 तक ट्राऊट मछलियों की संख्या आधी रह गई। वर्ष 1978-83 के पांच वर्षों में ट्राऊट की संख्या इससे आगे 40% और कम हो गई।
- चीन राष्ट्रीय पर्यावरणीय संरक्षण एजेंसी के अनुसार इस देश की नदियों में बहने वाला 78% जल अब पीने योग्य नहीं रहा है।
- भारत में जल प्रदूषण के बारे में योजना आयोग के एक दस्तावेज ने कहा कि उत्तर में डल झील से दक्षिण में पेरियार और चलियार नदियों

तक, पूर्व में दामोदर और हुगली नदियों से लेकर पश्चिम में थाना क्रीक (creek) तक स्थिति एक सी दुखद है। श्रद्धालु तीर्थयात्रियों को अनेक बार बड़े मेलों के अवसरों पर नदियों में नहाने से गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

- ❑ विश्व की नदियों पर लगभग 36000 बांध बन चुके हैं जिनसे हानि-लाभ का मूल्यांकन तो अलग से हो सकता है, पर इतना स्पष्ट नजर आ रहा है कि अनेक महान नदियां अब अपने कुछ क्षेत्रों में बेहद सिमट गई हैं और नाली जैसी बन गई हैं। इसका नदियों के विविध तरह के जीवन पर क्या असर पड़ा होगा, यह सोचा जा सकता है।
- ❑ भूतपूर्व सोवियत संघ ने आमू दरया और सइर दरया नदियों से इतना पानी खींचा कि आरल सागर (जो एक समय अपने विस्तार में विश्व की ताजे पानी की झीलों में चौथे नंबर पर थी) को लगभग खत्म ही कर दिया। यहां की सभी स्थानीय मछलियों की किस्में लुप्तप्राय हैं तथा इनपर आधारित मछली का रोजगार तहस-नहस हो चुका है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी कोलोरेडो नदी में अत्याधिक जल का दोहन कर इस नदी को एक बड़े क्षेत्र में लगभग सुखा दिया।

आखिर नदियों की इतनी दुर्दशा कैसे हुई? इतिहास के आरंभिक पृष्ठों में हम देखते हैं कि लगभग सभी सभ्यताएं न केवल नदियों के किनारे पर बसी अपितु उनमें से अनेक ने नदियों की वंदना की और उन्हें पूजा। भारत जैसे कुछ देशों में तो यह परंपरा अभी तक कायम है और नदियों के साथ उपासना

और उत्सवों की एक समृद्ध संस्कृति जुड़ी हुई है। इसके बावजूद नदियों की इतनी बुरी हालत हुई है तो उसका एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य ने धीरे-धीरे प्रकृति के अपने दृष्टिकोण में व्यापक बदलाव किया और कहीं-कहीं श्रद्धा के कुछ बाहरी रूपों को बनाए रखते हुए भी उसकी मूल प्रवृत्ति प्रकृति के प्रति आधिपत्य स्थापित करने की, उसका अधिकोधिक दोहन करने की हो गई।

इस शताव्दी में अनेक अधिकारियों और विशेषज्ञों ने नदियों के बारे में लिखते हुए इस तरह के विचार व्यक्त किए हैं कि जब तक इन पर अनेक बड़े बांध नहीं बना दिए जाते हैं, तब तक देश को महान आर्थिक हानि होती रहेगी और नदियों का पानी 'बेकार' ही समुद्र में बहता रहेगा। दूसरे शव्दों में अपने प्राकृतिक रूप में बहती हुई नदी की उनके अर्थशास्त्र में कोई कीमत नहीं है। क्या इस दृष्टिकोण को वैज्ञानिक और तर्कसंगत माना जा सकता है ?

वास्तव में प्राकृतिक रूप से बहती हुई नदी, अपने उद्गम स्थल से लेकर किसी बड़ी नदी या समुद्र में मिलने की अपनी यात्रा के दौरान, आसपास के लोगों को निरंतर कुछ देती है और उनकी आजीविका, दैनिक जीवन की जरूरतों में तरह-तरह से मदद करती है। बड़े बांधों के निर्माण के बिना भी प्राकृतिक रूप से बहती कोई भी बड़ी नदी व उसकी सहायक नदियां अपने आसपास के बड़ी संख्या के लोगों व पशु-पक्षियों की पीने के पानी की जरूरत, अनेक दैनिक कार्यों के लिए पानी की उपलव्धि, पनचक्कियों व छोटे स्तर की सिंचाई की जरूरत आदि की आपूर्त्ति करती ही रही है। नदी के बहाव से आसपास के काफी बड़े क्षेत्र में कुओं से भूजल प्राप्त करने में

सुविधा रही है। इन नदियों में मछलियों व अन्य जल-जीवों को उन्मुक्त आश्रय स्थल मिलता रहा है व इस आधार पर बहुत बड़ी संख्या में मछुआरों को व उनसे मिले जुले समुदायों को स्थाई रोजगार मिलता रहा है। इन नदियों में बाढ़ जरूर आती रही है पर साथ यह बाढ़ उपजाऊ मिट्टी की वह भेंट लाती रही है जो किसानों के लिए बहुमूल्य है। प्राकृतिक रूप से बहती हुई नदियों के ये सब लाभ स्थाई लाभ हैं।

प्राकृतिक रूप से बहती नदियों ने यातायात का एक अपेक्षाकृत सस्ता, सरल, कम प्रदूषण व अधिक आनन्द वाला रास्ता उपलब्ध करवाए रखा है। प्राकृतिक नदियों का जो अपना सौन्दर्य है, इन नदियों की जो अठखेलियां और चंचलता है, इनके जो कुछ ही दूरी पर तरह-तरह के बदलते रूप और स्वभाव हैं, इनसे जुड़ी जो कहानियां और इतिहास हैं, जो श्रद्धाएं और मनौतियां हैं, जो यात्रायें और परिक्रमाएं हैं, उनका कोई अर्थशास्त्री हिसाब लगाना चाहे भी तो वह कभी सफल नहीं हो सकेगा। फिर भी यदि पर्यटन की दृष्टि से ही कोई इन सब को देखना चाहे तो यह एक बहुमूल्य संपदा है।

इतना ही नहीं, प्राकृतिक नदी समुद्र के तटीय क्षेत्र का पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखने में अमूल्य भूमिका निभाती है। यह प्राकृतिक नदियों का एक उपेक्षित पक्ष है पर साथ ही बेहद महत्वपूर्ण पक्ष है और उसकी महत्ता को अब विशेषकर ब्लैक सी या काले समुद्र की तबाही जैसे सामयिक चिन्ता के विषयों के संदर्भ में समझा जा रहा है। समुद्र की जैव विविधता के लिए तटीय क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण है। यदि तटीय क्षेत्र का पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ता है तो उसका प्रतिकूल असर समुद्र के एक बड़े भाग में रहने वाले

जीवों पर पड़ता है। तटीय क्षेत्र का पर्यावरण काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि प्राकृतिक नदियां उसे उतना मीठा पानी, गाद-मिट्टी आदि उपलब्ध कराती है कि नहीं जितनी की उसे व वहां के जीवों को जरूरत है। जहां नदी समुद्र से मिलती है वहां के पर्यावरण के लिए खारे पानी, मीठे पानी और मिट्टी-गाद का एक विशेष अनुपात अनुकूल होता है - एक ऐसा अनुपात जो सदियों से बह रही और सागर में समा रही प्राकृतिक नदियों के बहाव से निश्चित होता है। जब नदियों पर बांध बनाकर उन्हें रोका जाता है या उनमें बहुत सा विषैला कचरा डाला जाता है, तो उसका दुष्परिणाम नदी, उसके जीवों और आसपास के निवासियों तक ही सीमित नहीं रहता है। यह प्रतिकूल असर तटीय क्षेत्रों के बिगड़े हुए पर्यावरण के माध्यम से समुद्र के एक बड़े हिस्से को भी प्रभावित कर सकता है।

नदी के प्राकृतिक बहाव को मनुष्य ने बड़े बांध बनाकर अवरूद्ध किया है जिससे बहाव के कुछ क्षेत्रों में नदी एक तंग से नाले में बदल जाती है या लुप्तप्राय हो जाती है। मनुष्य का दूसरा प्रमुख हस्तक्षेप यह रहा है कि उसने इतनी अधिक और इतनी विषैली गंदगी नदियों में फेंकी है जिससे उनका प्राकृतिक स्वरूप ही बदल जाए, उनका जीवनदायिनी जल तरह-तरह की बीमारियों का स्रोत बन जाए और मछलियां तथा अन्य जल-जीव तड़प-तड़प कर मरने लगें। कई नदियों में दोनों तरह के हस्तक्षेप एक साथ हुए हैं। पहले तो पानी रोक कर नदी का बहाव कम कर दिया गया और फिर उसमें फैकने वाली गंदगी की मात्रा बढ़ा दी गई। इस तरह नदी को न केवल एक नाला बनाया गया अपितु एक गंदा नाला बना दिया गया।

E-130 05284

निश्चय ही नदी के प्राकृतिक बहाव और स्वरूप में बाधा डालकर मनुष्य ने अपनी समझ के अनुकूल कुछ लाभ भी प्राप्त किया - खेतों की अधिक बड़े पैमाने पर सिंचाई की, शहरों और उद्योगों को पानी दिया, गंदगी को ठिकाने लगाया। पर साथ ही उसे यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि प्राकृतिक नदी जिस तरह के विविध और स्थाई लाभ आसपास के लोगों और हर तरह के जीव-जंतुओं को देती थी, उनमें उसने तरह-तरह की बाधा भी पहुंचाई है, उन्हें तरह-तरह से कम भी किया है। जिन नदियों पर अनेक बांध बन चुके हैं और जिनमें बहुत बड़ी मात्रा में गंदगी और विषैले तत्व फैंके जा चुके हैं, वे नदियां अब पहले वाली नदियां नहीं रही यह तो स्पष्ट है। मनुष्य को पूरी ईमानदारी और सच्चाई से सोचना पड़ेगा कि उसने इन नदियों से जो किया वह सही था या गलत। इस समय यदि आधुनिक नदी इंजीनियरिंग के अनेक प्रशंसक हैं, तो ऐसे लोगों की संख्या भी बढ़ रही है जो उन्मुक्त खूबसूरत नदियों को गंदे नालों में परिवर्तित होने को आधुनिक युग की एक त्रासदी मानते हैं।

क्या हम पिछले अनुभव से भविष्य के लिए सीखने को तैयार हैं? क्या हम नदियों के प्रति अपने व्यवहार में बुनियादी बदलाव लाने के लिए तैयार हैं ? यदि हां तो हमें नदी के प्राकृतिक बहाव के महत्व को भी समझना होगा और यह समझ बनाने के बाद ही नदी संबंधी अपनी योजनाएं बनानी होंगी।

नदी के आसपास रहने वाले लोगों और जीव जंतुओं का नदी के लिए क्या महत्व है, इस पर समुचित ध्यान देना होगा। नदी व समुद्र के तटीय क्षेत्र में रहने वाले सब जीव-जंतुओं की क्या जरूरतें हैं, विशेषकर उनके प्रजनन

के लिए कौन सी स्थितियां अनुकूल हैं और कौन सी नहीं, इसकी सही समझ बनाकर और सभी जीव-जंतुओं के जीवन के अधिकार को स्वीकार करते हुए ही हमें आगे बढ़ना पड़ेगा।

इसके साथ ही विज्ञान और तकनीक की नदियों के संदर्भ में भूमिका नए सिरे से निर्धारित करनी होगी। अच्छी विज्ञान और तकनीक क्या हमें यह सिखाती है कि अल्प-कालीन उद्देश्यों के लिए सदियों से चली आ रही विरासत, विविध तरह के जीवन और प्रकृति की अपनी अनुपम और गहरी समझ की व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया जाए ? या अच्छे विज्ञान का तकाजा यह है कि किसी भी व्यापक बदलाव लाने वाले कार्य व परियोजना के सब परिणामों को ध्यान से जांचा-परखा जाए और इसके लिए पहले प्रकृति की अपनी व्यवस्था की गहरी समझ बनाई जाए ?

नदियों को हमने पूजा है, उन्हें मां कहा है। क्या मां की हम इतनी भी इज्जत नहीं कर सकते कि उसे अच्छी तरह समझने का प्रयास करें। गढ़वाल के लोककवि घनश्याम शैलानी ने गंगा नदी पर अपनी एक कविता में लिखा है हम कुपुत्र जरूर हैं पर मां कभी कुमाता नहीं हो सकती। गंगा मां तो इतना सहने के बाद भी इसी बात के लिए तत्पर है कि हमारे अधिक से अधिक काम आए। तो क्या हमारा फर्ज इतना भी नहीं कि मां पर जो संकट विभिन्न रूपों में आया है उसे समझें और उसकी रक्षा करें। इस महाकुंभ के अवसर पर इस दिशा में ही हमारी सोच और संकल्प बढ़े।

We hope that you liked this booklet. Please write for a complete catalogue of Bharat Dogra's books at the following address :
C-27 Raksha Kunj, Paschim Vihar, New Delhi -110063

The best way to get all future books by this author is to subscribe to Mother Earth NFS India (see details on inside back cover).

Encylopedia of Development, Environment and Welfare

The only encyclopedia of its kind which combines information and analysis at the Indian level and the World level. Pages 312, Size 10 x 7.5 inches. Durable hard bound cover with jacket. Price Rs. 300/- in India, $20 Outside India.

This booklet has been published jointly by RLEK (see details on inside front cover) and Mother Earth NFS - India (see details on inside back cover)

यह पुस्तिका भारत डोगरा द्वारा सी-27, रक्षा कुंज, पश्चिम विहार, नई दिल्ली से प्रकाशित और कुलश्रेष्ठ प्रिंटर्स, 11, त्यागी विहार, नांगलोई, दिल्ली दूरभाष: 5472648 से मुद्रित की गई है।

धरती मां-एन.एफ.एस इंडिया

दुनिया के दु:ख-दर्द को जानने-समझने का एक प्रयास

1998 से नये रूप रंग में

अपना-अपना नजरिया है दुनिया को देखने का। किसी को राजनीतिक दलों के दांवपेच सबसे महत्वपूर्ण लग सकते हैं तो किसी को सिनेमा और टीवी जगत की नवीनतम मसालेदार खबर। हमें सबसे महत्वपूर्ण सवाल वह लगते हैं जिनसे दुनिया का दु:ख-दर्द जुड़ा है गरीबी, शोषण, पर्यावरण, हिंसा, आपसी रिश्ते, महिलाओं और बच्चों के अधिकार, धर्म की सही पहचान और इसी तरह के अन्य मुद्दे।

इन विषयों पर पुस्तिकायें, लेख और समाचार प्राप्त करने के लिए आप धरती मां-एन.एफ.एस. इंडिया अवश्य प्राप्त कीजिये।

हर 3 महीनों में एक बार तैयार होने वाले इस पैकिट का नाम है एन.एफ.एस. इंडिया।

एक वर्ष में ऐसे चार पैकिट प्राप्त करने का शुल्क है 250/-रूपये।

एन.एफ.एस. इंडिया 12 वर्षो से निरंतर प्रकाशित हो रहा है और इसका संपादन हो रहा है भारत डोगरा द्वारा। एन.एफ.एस. इंडिया में आपको इस लेखक की नई पुस्तिकायें भी प्राप्त होती रहेंगी। पता है, सी - 27, रक्षा कुंज, पश्चिम विहार, नई दिल्ली - 110063। चेक या ड्राफ्ट N.F.S. India के नाम से भिजवायें। यह पैकिट अंग्रेजी में भी उपलब्ध है।

आशा है आप यह पैकिट नियमित मंगवायेंगे । आपके पत्र का इंतजार है। एक नमूना प्रति प्राप्त करनी है तो 50 रुपये अवश्य भेजिये। यह बिना किसी अनुदान के चलने वाला स्वतंत्र प्रयास है अत: निशुल्क भेजना संभव नहीं है।

चित्र - ज्योति कुमार

"गंगा तो विशेषकर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, जिससे लिपटी हुई है भारत की जातीय स्मृतियां, उसकी आशाएं और उसके भय, उसके विजय-गान, उसकी विजय और पराजय। गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है, निशान रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर भी वही गंगा की गंगा। ..... यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की, यादगार की, जो बहती हुई आई है वर्तमान तक और बहती चली आ रही है भविष्य के महासागर की ओर।"

जवाहरलाल नेहरू